प्रस्तावना
(Preamble)

भारतीय संविधान की प्रस्तावना अमेरिकी संविधान से प्रभावित है। यह भारतीय संविधान की मूल कुंजी है, जिसमें संविधान के मूलभूत आदर्शों एवं उद्देश्यों का वर्णन है। प्रस्तावना में वर्णित ये आदर्श संविधान सभा द्वारा 22 जनवरी, 1947 को उद्देश्य प्रस्ताव के रूप में स्वीकार किए गए थे, जिससे भारत में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय स्थापित करने का संकल्प लिया गया था। प्रस्तावना में संविधान का मूल दर्शन अंतर्निहित है। यह भारतीय संविधान की जन्म कुण्डली है। कॉर्ल फ्रेड्रिक के अनुसार, 'प्रस्तावना के द्वारा वह जनमत प्रकट होता है, जिससे संविधान अपनी शक्ति प्राप्त करता है।' पं. नेहरू के अनुसार, 'प्रस्तावना में दो महान क्रांतियों के आदर्शों, फ्रांसीसी क्रांति का दर्शन, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व का वर्णन है तथा रूसी क्रांति के सामाजिक एवं आर्थिक न्याय के आदर्शों को भी इसमें सम्मिलित किया गया है।

शक्ति का स्रोत (Source of Power)

प्रस्तावना में संविधान की शक्ति के स्रोत का वर्णन है, जिसमें यह स्पष्ट कहा गया है कि **हम भारत के लोगों** ने संविधान का निर्माण किया तथा उसे स्वयं स्वीकार किया। अत: संविधान किसी विशेष समूह या व्यक्ति द्वारा निर्मित नहीं है, अपितु इसका निर्माण जनता के प्रतिनिधियों के द्वारा किया गया। लोकतंत्र में जनता को ही शक्ति का मूल स्रोत माना जाता है। लोकतंत्र में जनता को ही जनार्दन की संज्ञा दी जाती है। अंग्रेजों के भारत पर शासन के दौरान आम जनता शोषित एवं वंचित थी। जबकि आजादी के बाद आम जनता के द्वारा अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से संविधान का निर्माण किया गया।

आदर्श (Ideal)

इसमें भारतीय संविधान के दर्शन का उल्लेख है। प्रस्तावना में भारतीय संविधान के मूलभूत आदर्शों का वर्णन है। डॉ. अंबेडकर के शब्दों में 'स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना हो चुकी है और संविधान का मूलभूत उद्देश्य सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र को स्थापित करना है।' ग्रेनविल ऑस्टिन के अनुसार, भारतीय संविधान मूलत: सामाजिक क्रांति का दस्तावेज है और प्रस्तावना में वर्णित **निम्नलिखित आदर्श इसी ओर संकेत करते हैं** –

- सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय की प्राप्ति इसका मूल उद्देश्य है। सामाजिक न्याय का अभिप्राय समाज के संसाधनों का समाज में उचित वितरण है। जाति, लिंग, धर्म तथा प्रजाति के आधार पर भेदभाव का अभाव है। सामाजिक न्याय का आशय समाज में सभी व्यक्तियों के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आवास की मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध कराना है। भारत में आर्थिक न्याय का अभिप्राय संपत्तिशाली लोगों की संपत्ति को छिनना नहीं, बल्कि समाज के वंचित लोगों के जीवन को बेहतर बनाना है। राजनीतिक न्याय का आशय, सभी व्यक्तियों को राजनीतिक व्यवस्था में भागीदारी का समान अधिकार प्रदान करना तथा सभी को राजनीतिक उद्देश्यों के लिए समूह एवं संगठन के निर्माण का अधिकार है। मूल अधिकार के भाग और निदेशक तत्वों के भाग में संविधान की अंतर्रात्मा निहित है। इसके अतिरिक्त अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों, पिछड़े वर्गों एवं महिलाओं के कल्याण के विशेष उपाय भी वर्णित हैं। इसलिए प्रस्तावना को **'संविधान की जन्म कुंडली'** भी कहा जाता है।
- विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म एवं उपासना की स्वतंत्रता प्रस्तावना में वर्णित है, जिसके अंतर्गत् सभी व्यक्तियों को मुक्त रूप में अपने विचार रखने की स्वतंत्रता है। विश्वास और उपासना की स्वतंत्रता अंत:करण की स्वतंत्रता से संबंधित हैं, जो धार्मिक स्वतंत्रता के लिए आवश्यक होती है। इससे यह प्रतीत होता है कि विश्वास और उपासना व्यक्ति की निजी आस्था का विषय है, जिसका निर्धारण सरकार के द्वारा नहीं होगा। इसमें पंथनिरपेक्षता का आधार भी दिखाई देता है, क्योंकि विश्वास और उपासना का नियंत्रण सरकार के द्वारा नहीं होगा।
- प्रस्थिति और अवसर की समानता को अर्जित करना प्रस्तावना का मूल भाग है। संविधान में सभी व्यक्तियों के साथ समानता का प्रावधान वर्णित है। इसलिए अमीर-गरीब, पुरुष-महिला, उच्च-निम्न जाति के आधार पर व्यक्तियों के

साथ भेदभाव संभव नहीं है। व्यक्ति को जीवन में अपने व्यवसाय के चयन की स्वतंत्रता है। राज्य के अंतर्गत् पदों के लिए सभी व्यक्तियों को समान अवसर दिए गए हैं, जिससे व्यक्ति अपने जीवन के लक्ष्यों का निर्धारण कर सके।

- सभी नागरिकों में बंधुता की भावना का विकास और व्यक्ति की गरिमा के साथ राष्ट्र की एकता व अखंडता की रक्षा करना प्रस्तावना का मूल ध्येय है। संविधान में स्वतंत्रता एवं समानता प्रदान करने के साथ-साथ समाज में विद्यमान द्वेष को भी समाप्त करने का प्रयत्न किया गया है, जिससे लोगों के बीच भाई-चारे का विकास हो और अपनत्व की भावना का निर्माण हो। व्यक्ति को प्राप्त स्वतंत्रता, समानता तथा न्याय उपलब्ध कराने के लिए राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता का निर्माण प्राथमिक शर्त है। भारत के आजादी के बाद देश के विरुद्ध एकता एवं अखण्डता के लिए अनेक चुनौतियां विद्यमान थीं तथा वर्तमान में भी आतंरिक सुरक्षा की चुनौतियां बनी हुई हैं।

प्रस्तावना में राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता बनाए रखने पर भी महत्वपूर्ण बल प्रदान किया गया है, क्योंकि जिस समय भारत स्वतंत्र हुआ, तत्कालीन समय में **देश की राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के समय निम्नलिखित चुनौतियां विद्यमान थीं** -

- देशी रियासतों का भारतीय संघ में विलय।
- उत्तर-पूर्वी राज्यों में आतंकवाद या अलगाववाद।
- पाकिस्तान द्वारा जम्मू एवं कश्मीर में कबायली आक्रमण।
- देश में बड़े पैमाने पर सांप्रदायिक दंगे।

शासन पद्धति (System of Government)

1. संप्रभु (Sovereignty)

प्रस्तावना में वर्णित उपरोक्त आदर्शों को पूर्ण करने के लिए सरकार की प्रणाली का भी स्पष्ट वर्णन है। इसके अनुसार, 'भारत ने संप्रभु, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य शासन के मूलभूत आधार को स्वीकार किया।' संप्रभु का अभिप्राय, आंतरिक रूप में सर्वशक्तिशाली और वाह्य रूप में स्वतंत्र है। वर्ष-1947 में भारत ब्रिटिश साम्राज्ञी की अधीनता से मुक्त हो गया तथा स्वतंत्रता के बाद भारतीय सरकार किसी अन्य सरकार के अधीन नहीं है।

2. समाजवादी (Socialist)

समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और अखण्डता शब्द 42वें संविधान संशोधन, 1976 के द्वारा जोड़ा गया। लेकिन संविधान में समाजवाद का अर्थ स्पष्ट नहीं है। इसे स्पष्ट करते हुए वर्ष-1955 के कांग्रेस के आवाड़ी अधिवेशन में यह कहा गया कि समाजवाद का आशय सभी लोगों को जीवन की न्यूनतम सुविधाएं प्रदान करना, अवसर की समानता और समाज में शोषण एवं विभेदों को समाप्त करते हुए समाज के समाजवादी ढांचे का निर्माण करना। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के अनुसार, 'हमारे समाजवाद का एक अलग रूप है और यह सोवियत संघ से भिन्न है। भारत में राष्ट्रीयकरण तभी किया जाएगा, जब आवश्यकता होगी। केवल राष्ट्रीयकरण हमारे समाजवाद का अभिप्राय नहीं है।' यह बिंदु ध्यान देने योग्य है कि संविधान सभा में प्रो. के. टी. शाह ने प्रस्तावना में 'समाजवाद' शब्द जोड़ने का आग्रह किया था, परंतु डॉ. अंबेडकर ने इसे अस्वीकृत कर दिया। इनके अनुसार, समाजवाद, भारतीय संविधान में अंतर्निहित है। इसलिए इसे 42वें संविधान संशोधन द्वारा जोड़कर स्पष्ट बना दिया गया।

3. पंथनिरपेक्षता (Secularism)

पंथनिरपेक्षता के अनुसार, धर्म, व्यक्ति की निजी आस्था का विषय है। राज्य का कोई धर्म नहीं है तथा राज्य के द्वारा किसी भी धर्म को प्रोत्साहित नहीं किया जाएगा और न ही राज्य के द्वारा किसी धर्म का विरोध किया जाएगा। अत: राज्य, धर्म से तटस्थ है। राज्य का सरोकार सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों का निर्माण है। धार्मिक गतिविधियों में हस्तक्षेप राज्य के कार्य में सम्मिलित नहीं है। लोकतंत्र का आशय जनता के द्वारा निर्वाचित सरकार है अर्थात् यह जनता की सहमति पर आधारित सरकार है, जो जनता के प्रति उत्तरदाई होती है।

यह बिंदु अत्यधिक दिलचस्प और उल्लेखनीय है कि 'पंथनिरपेक्षता' शब्द को भी डॉ. अंबेडकर ने संविधान सभा में प्रस्तावना में सम्मिलित करने से इनकार कर दिया था, क्योंकि इनके अनुसार, भारतीय संविधान में पंथनिरपेक्षता अंतर्निहित है और प्रस्तावना में विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था और उपासना की स्वतंत्रता को पहले ही अपनाया जा

चुका है। इसलिए पंथनिरपेक्ष शब्द को जोड़ने की आवश्यकता नहीं है, परंतु 42वें संविधान संशोधन द्वारा इसे भी प्रस्तावना में सम्मिलित कर लिया गया। पंथनिरपेक्ष शब्द भी परिभाषित नहीं है। सामान्यत: पंथनिरपेक्षता का आशय, राज्य द्वारा सभी धर्मों के प्रति समानता का भाव प्रदर्शित करना है। इसके अनुसार, 'राज्य का कोई धर्म नहीं होगा, अपितु धर्म, व्यक्ति विशेष का होगा।' अत: भारत में धर्म और राज्य के मध्य स्पष्ट विभाजन किया गया। इससे स्पष्ट है कि भारत जैसे विविधतापूर्ण एवं बहुलता वाले देश में सभी धर्मावलंबियों का महत्व समान है।

4. गणतंत्र (Republic)

नकारात्मक रूप में गणतंत्र का अभिप्राय यह है कि राष्ट्र का प्रधान वंशानुगत् तथा मनोनीत नहीं होगा। गणराज्य का अभिप्राय राज्य का प्रधान निर्वाचित होगा, जैसा कि भारत के राष्ट्रपति का निर्वाचन किया जाता है। गणतंत्र का व्यापक अभिप्राय यह भी है कि भारत का प्रत्येक नागरिक राष्ट्रपति पद अथवा सर्वोच्च पद के लिए निर्वाचन में भाग ले सकता है। अत: गणतंत्र शब्द सभी नागरिकों की समानता का द्योतक तथा शासन की शक्ति का मूल आधार जनता में ही निहित है। इसलिए लोकतंत्र में निर्वाचन से भी ज्यादा महत्वपूर्ण जनता की शक्ति है, जिसे **गणतंत्र** कहा जाता है।

निर्माण की तिथि (Date of Creation)

प्रस्तावना में संविधान के निर्माण की तिथि (26 नवंबर, 1949) का भी उल्लेख है। प्रस्तावना के लागू होने की तिथि से यह प्रतीत होता है कि संविधान के लागू होने के पहले ही प्रस्तावना को लागू कर दिया गया।

प्रस्तावना, संविधान का भाग (Preamble Part of the Constitution)

प्रस्तावना का निर्माण भारतीय संविधान के निर्माण के बाद हुआ। अत: प्रस्तावना, भारतीय संविधान के अनुसार निर्मित है, न कि प्रस्तावना के अनुसार भारतीय संविधान बना है। प्रस्तावना में भारतीय संविधान के मूल आदर्शों एवं उद्देश्यों का वर्णन है। बेरूबारी केस, 1960 में न्यायपालिका के अनुसार, प्रस्तावना, संविधान का भाग नहीं है, क्योंकि संविधान सर्वोच्च विधि है, जिसमें आदर्शों एवं उद्देश्यों का महत्व नहीं होता। बेरूबारी, पश्चिम बंगाल राज्य का एक भू-भाग है, जिसे भारत सरकार के द्वारा पाकिस्तान को सौंपने का समझौता हुआ था, परंतु इस समझौते का आम जनता के द्वारा विरोध किया गया और उच्चतम न्यायालय में याचिका दायर की गई, जिसके द्वारा याचिका कर्ता ने यह आरोप लगाया कि समझौते में प्रस्तावना की भावना का उल्लंघन किया जा रहा है, क्योंकि प्रस्तावना में आम लोगों को शक्ति का मूल स्रोत बताया गया है। इसलिए बेरूबारी को पाकिस्तान को सौंपने से पहले जनमत संग्रह होना चाहिए, जिसे न्यायपालिका ने अस्वीकार कर दिया। न्यायपालिका के अनुसार, संसद में संविधान संशोधन के द्वारा भारत के किसी भू-भाग को विदेशी सरकार को सौंप सकती है, जिसके लिए जनमत संग्रह की आवश्यकता नहीं है। परंतु केशवानंद भारती वाद, 1973 में न्यायपालिका ने बेरूबारी के निर्णय को पलट दिया। प्रस्तावना को संविधान का अभिन्न भाग माना, क्योंकि प्रस्तावना में आदर्श एवं उद्देश्य का वर्णन है, जो भारतीय संविधान की मूल आत्मा है। न्यायपालिका के अनुसार, प्रस्तावना का प्रयोग संविधान की व्याख्या के लिए किया जा सकता है। संविधान के किसी भाग में अस्पष्टता की व्याख्या के लिए प्रस्तावना का सहारा लिया जा सकता है। न्यायपालिका ने कहा कि प्रस्तावना में संविधान की शक्ति के स्रोत का वर्णन नहीं है, परंतु प्रस्तावना, संविधान का भाग है। वर्ष-1994 में बोम्मई वाद में उच्चतम न्यायालय ने पंथनिरपेक्षता को संविधान का आधारभूत ढांचा माना, जिससे यह स्पष्ट है कि प्रस्तावना, संविधान का भाग है। क्योंकि भारतीय संविधान केवल शासन संचालन का एक माध्यम मात्र नहीं है, बल्कि मूलत: सामाजिक क्रांति का एक दस्तावेज है। प्रस्तावना को 'संविधान की जन्म कुंडली' भी कहा जाता है।

प्रस्तावना का संशोधन (Amendment of the Preamble)

भारतीय संविधान में संशोधन की प्रक्रिया एवं शक्ति का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद-368 में किया गया है, जिसके अनुसार, संविधान संशोधन के लिए संसद को विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है। संसद, सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत और उपस्थित एवं मत देने वाले दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से संविधान का संशोधन कर सकती है।

प्रस्तावना एवं मूलभूत ढांचा (Preamble and Basic Structure)

वर्ष-1973 में उच्चतम न्यायालय ने केशवानंद भारती वाद के ऐतिहासिक निर्णय में यह कहा कि संसद अनुच्छेद-368 में उल्लिखित प्रक्रिया एवं शक्ति के द्वारा संविधान के सभी भागों का संशोधन नहीं कर सकती। संसद के

द्वारा संविधान के मूलभूत ढांचे का संशोधन नहीं किया जा सकता तथा मूलभूत ढांचे का निर्धारण न्यायपालिका के द्वारा होगा। उच्चतम न्यायालय के द्वारा सरकार का लोकतांत्रिक, गणतांत्रिक स्वरूप एवं पंथनिरपेक्षता को संविधान का आधारभूत ढांचा घोषित किया गया है। अंत:करण की स्वतंत्रता, विधि का शासन, राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता भी आधारभूत ढांचे का भाग है। मूल अधिकार व निदेशक तत्वों के बीच सामंजस्य भी आधारभूत ढांचे में शामिल हैं। ये तत्व प्रस्तावना में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सम्मिलित हैं। इसलिए प्रस्तावना में संशोधन संभव नहीं है।

संविधान की जन्म कुंडली (Birth Chart of Constitution)

प्रस्तावना, अमेरिकी संविधान से लिया गया है। पूर्व न्यायामूर्ति हिदायतउल्ला के द्वारा यह कहा गया कि 'प्रस्तावना, संयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतंत्रता के घोषणा-पत्र की भांति है, लेकिन यह घोषणा-पत्र से ज्यादा महत्वपूर्ण है, जिसके द्वारा संविधान के आदर्शों एवं साधनों का उल्लेख किया गया है।' के. एम. मुंशी के द्वारा 'प्रस्तावना को **संविधान की जन्म कुंडली** के रूप में चित्रित किया गया' तथा ठाकुरदास भार्गव के द्वारा 'प्रस्तावना को संविधान का सबसे महत्वपूर्ण **भाग और आत्मा** कहा गया।' जन्म कुंडली का अभिप्राय है कि प्रस्तावना में वर्णित मूल आदर्शों एवं उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संविधान में विभिन्न प्रकार की संस्थाओं का निर्माण किया गया है। प्रस्तावना में वर्णित आदर्श, संविधान के मूल अधिकार के अध्याय तथा निदेशक तत्वों के अध्याय में वर्णित है तथा संसदीय संघात्मक सरकार के द्वारा इन उद्देश्यों को प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया है।

आलोचना (Criticism)

आलोचकों के अनुसार, प्रस्तावना में यह उल्लिखित है कि आम जनता के द्वारा निर्मित और आत्मार्पित किया गया, परंतु संविधान सभा के द्वारा प्रस्तावना के निर्माण के बाद इसे आम जनता के समक्ष जनमत संग्रह के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया। इसलिए यह आम लोगों के द्वारा आत्मार्पित नहीं है। यद्यपि यह आलोचना वास्तविक नहीं है, क्योंकि संविधान सभा जनता के प्रतिनिधियों की संस्था थी। अमेरिकी प्रस्तावना को भी आम जनता के समक्ष जनमत संग्रह के लिए नहीं रखा गया था।

.....

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learnig Platform
KHAN SIR

राज्य के नीति निदेशक तत्व
(Directive Principles of State Policy, (DPSP))

भारतीय संविधान सभा के द्वारा संविधान निर्माण के लिए अनेक समितियों का गठन किया गया था, उन्हीं में से एक महत्वपूर्ण समिति थी-मूल अधिकारों की उपसमिति, जिसे मूल अधिकारों के अध्याय के निर्माण का दायित्व सौंपा गया था, जिसके अध्यक्ष जे. बी. कृपलानी थे। इस समिति के द्वारा मूल अधिकारों के व्यापक दस्तावेज का निर्माण किया गया। स्वतंत्र भारत के समक्ष आर्थिक कठिनाईयां विद्यमान थीं तथा प्रशासन भी पूर्ण रूप में सक्षम नहीं था। इसलिए मूल अधिकारों के भारी-भरकम दस्तावेज को लागू करने में व्यावहारिक कठिनाइयां बनी हुई थीं।

संवैधानिक सलाहकार बी. एन. राव ने सुझाव दिया कि मूल अधिकारों के प्रस्तावित दस्तावेज को दो भागों में विभाजित करने की आवश्यकता है - प्रथम, वादयोग्य अधिकार एवं द्वितीय, अवादयोग्य अधिकार। वादयोग्य अधिकारों को संविधान के भाग-3 में शामिल किया गया, जिसके उल्लंघन के बाद व्यक्ति उच्चतम न्यायालय में जा सकता है। अवादयोग्य अधिकार की रक्षा के लिए व्यक्ति को उच्चतम न्यायालय में प्रवेश का अधिकार नहीं था। इसी अवादयोग्य अधिकारों को ही निदेशक तत्वों का नाम दिया गया, जिसका संविधान के भाग-4 में अनुच्छेद-36 से 51 तक वर्णन किया गया है। भारतीय संविधान में नीति निदेशक तत्वों को मूलतः आयरलैंड के संविधान से लिया गया था, जिसे आयरलैंड ने स्पेन के संविधान से आत्मसात किया था। भारत शासन अधिनियम, 1935 में भी निदेशक तत्वों का आधार विद्यमान है, जिसे निर्देशों का प्रपत्र (Instruments of Instruction) कहा जाता था।

उद्देश्य (Objectives)

भारतीय संविधान निर्माताओं का मूल उद्देश्य समाज में विद्यमान विषमता, शोषण, गरीबी और अभाव को दूर करना था, क्योंकि स्वतंत्र भारत में लोगों को स्वतंत्रता और मतदान का अधिकार तो प्राप्त हो गया था, परंतु सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार उपलब्ध कराना सरकार के समक्ष मूल चुनौती थी। भारत में सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना के लिए निदेशक तत्वों के अध्याय को सम्मिलित किया गया। भारतीय संविधान, सामाजिक क्रांति का दस्तावेज है। ग्रेनविल ऑस्टिन के अनुसार, 'निदेशक तत्व, सामाजिक क्रांति के उद्देश्यों की प्राप्ति के माध्यम हैं।' इनके अनुसार, निदेशक तत्वों के द्वारा संविधान सभा ने भारत की भावी सरकारों को यह उत्तरदायित्व सौंपा है। अनुच्छेद-37 के अनुसार, राज्य का यह दायित्व है कि वह निदेशक तत्वों का प्रयोग अपनी नीतियों में करें। निदेशक तत्वों के द्वारा भारत में कल्याणकारी राज्य की नींव रखी गयी और वंचित वर्गों के उत्थान के लिए विशेष प्रयत्न किया गया।

प्रकृति (Nature)

निदेशक तत्वों का अध्याय अवादयोग्य है। अतः इसे लागू कराने के लिए न्यायपालिका का सहारा नहीं लिया जा सकता। यदि इसे सरकार लागू नहीं कर रही है, तो इसे लागू कराने के लिए कोई भी व्यक्ति न्यायालय में नहीं जा सकता। राज्य के द्वारा निर्मित किसी विधि को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि इसके द्वारा निदेशक तत्वों का उल्लंघन किया गया है। इसी आधार पर इसकी आलोचना भी होती है और इसे पुण्य आत्माओं की महत्वाकांक्षा मात्र कहा गया है। अतः निदेशक तत्व की मूल प्रकृति नैतिक है। इसलिए निदेशक तत्वों को 'नीति निदेशक तत्व' कहा जाता है, जो शासन के संचालन के लिए मूलभूत और शासन संचालन के आदर्श हैं। इसी के साथ निदेशक तत्वों में अनेक अधिकारों का उल्लेख है, जिसे क्रियान्वित करना राज्य का दायित्व है।

शासन का मूलभूत आधार (Fundamentals of Governance)

निदेशक तत्वों के अनुच्छेद - 37 में यह उल्लिखित है कि इस भाग में उल्लिखित कोई प्रावधान न्यायपालिका बाध्यकारी रूप में लागू नहीं करा सकतीं, बल्कि यह शासन का मूलभूत आधार है। राज्य का यह दायित्व है कि विधि निर्माण करते समय इस सिद्धांतों का प्रयोग करे। निदेशक तत्व, विधायिका एवं कार्यपालिका के लिए एक निर्देश है, जिनके आधार पर समूचा शासन संचालित होगा। यह वैधानिक नहीं, अपितु आदर्शों का समुच्चय है।

कल्याणकारी राज्य (Welfare State)

निदेशक तत्व के अनुच्छेद-38 में यह स्पष्ट उल्लिखित है कि राज्य कल्याणकारी होगा, जिसके द्वारा व्यक्तियों और समूहों के बीच आय एवं अवसर की समानता स्थापित की जाएगी तथा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय स्थापित किया जाएगा। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद-39 में यह उल्लिखित है कि अर्थव्यवस्था का संचालन इस प्रकार होगा, जिसके समुदाय या समाज को लाभ प्राप्त हो तथा आर्थिक शक्तियों का केंद्रीयकरण कुछ हाथों में नहीं होने दिया जाएगा।

उपरोक्त आदर्शों को पूर्ण करने के लिए स्वतंत्रता के बाद जमींदारी उन्मूलन भूमि सुधार के कार्यक्रम लागू किए गए तथा सार्वजनिक उद्यमों की प्राथमिकता की आर्थिक प्रणाली अपनाई गई, जिससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि संविधान निर्माताओं का झुकाव समाजवादी आर्थिक प्रणाली की ओर था। यह उल्लेखनीय है कि वर्ष-1991 में भारत में आर्थिक नीति में आमूलकारी निर्णायक परिवर्तन करते हुए उदारीकरण की नीति अपनाई गई। परिणामस्वरूप शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसे सामाजिक क्षेत्रों का भी निजीकरण हो गया।

यह उल्लेखनीय है कि वर्ष-1991 में आर्थिक विकास की साधनों/रणनीति को परिवर्तित किया गया, जिससे देश के आर्थिक संसाधनों में वृद्धि हो सके और सामाजिक न्याय के कार्यक्रमों को प्रभावी रूप में लागू किया जा सके। इसलिए उदारीकरण की नीति और सामाजिक न्याय का विरोध करने के बजाए, एक-दूसरे के पूरक के रूप में देखने की आवश्यकता है, क्योंकि उदारीकरण से अर्थव्यवस्था को कुशल एवं प्रतिस्पर्धी बनाए जाने का प्रयत्न किया जा रहा है, जिससे प्राप्त संसाधनों का वितरण वंचित वर्गों के हितों के लिए किया जा सके। इसलिए वर्तमान सरकार के द्वारा सामाजिक उत्थान की अनेक योजनाएं संचालित की जा रही हैं, जिससे आय एवं अवसर की विषमता न्यूनतम हो सके।

समाजवादी राज्य का आधार (Base of Socialist State)

भारत के मूल संविधान में समाजवाद शब्द का उल्लेख नहीं किया गया था। परंतु 42वें संविधान संशोधन के बाद 'समाजवाद' शब्द प्रस्तावना में जोड़ दिया गया। निदेशक तत्वों के भाग में समाजवादी राज्य का आधार विद्यमान है। क्योंकि अनुच्छेद-38 में यह उल्लिखित है कि एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण किया जाएगा, जिसमें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय विद्यमान हो तथा आय में विद्यमान विषमता को न्यूनतम किया जाएगा। व्यक्तियों और समूहों के बीच सुविधाओं और अवसरों की विषमता को भी समाप्त किया जाएगा, जिसकी पूर्ति के लिए समाजवादी आर्थिक व्यवस्था का प्रावधान किया गया, जिसमें उत्पादन के साधनों पर राज्य का नियंत्रण स्थापित किया गया और सार्वजनिक उद्यमों अथवा सरकारी उद्योगों के माध्यम से सार्वजनिक संपत्ति का लाभ समूचे समाज में वितरित करने का प्रयास किया गया। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के द्वारा 42वें संविधान संशोधन के माध्यम से उद्योगों के प्रबंध में श्रमिकों की भागीदारी सुनिश्चित किया गया, (अनुच्छेद-43(ा)) तथा निःशुल्क एवं वैधानिक सहायता का अधिकार भी प्रदान किया गया, जिससे आर्थिक अथवा अन्य अभावों के कारण वे न्याय से वंचित न हों, (अनुच्छेद-39(ा))।

सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार (Socio-Economic Rights)

मूल अधिकारों के भाग में नागरिक अधिकारों का उल्लेख किया गया है, परंतु ये नागरिक अधिकार सभी के लिए तभी उपलब्ध होंगे, जब समाज में समानता विद्यमान हों। निदेशक तत्वों के भाग में कार्य का अधिकार एवं शिक्षा का अधिकार उल्लिखित है। बेरोजगारी, वृद्धावस्था, बीमारी एवं अभाव की परिस्थिति में व्यक्तियों को राज्य के द्वारा सहायता प्रदान किया जाएगा, (अनुच्छेद-41)। राज्य के द्वारा 6 वर्ष तक के बच्चों के लिए बाल्यावस्था सुविधा एवं शिक्षा उपलब्ध कराई जाएगी, (अनुच्छेद-45)।

नीति निदेशक तत्वों का वर्गीकरण (Classification of Directive Principles)

नीति निदेशक तत्वों के व्यापक रूप को देखते हुए इसे कई भागों में विभाजित किया जा सकता है। कुछ तत्व समाजवाद की स्थापना के लिए हैं, जबकि कुछ गांधीवादी विचारों से प्रभावित हैं तथा कई तत्व समाज के पिछड़े तथा दलित वर्गों के उत्थान हेतु उल्लिखित किए गए हैं। **नीति निदेशक तत्वों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है** -

1. गांधीवादी तत्व (Gandhian Elements)

महात्मा गांधी, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के सर्वाधिक प्रभावशाली नेता थे और उनके विचारों का प्रभाव भारत में सभी तत्वों पर पड़ा है। निदेशक तत्व में गांधीजी के विचार से **प्रभावित तत्व इस प्रकार हैं** -

- **ग्राम पंचायतों का गठन या स्थानीय स्वशासन, (अनुच्छेद-40)** - गांधीजी भारत को गांवों का देश मानते थे तथा उनका विचार था कि भारत का विकास तभी होगा, जब गांवों का विकास होगा और गांवों के विकास के लिए ग्राम पंचायतों का गठन सबसे क्रांतिकारी पहल है।
- **कुटीर उद्योगों की स्थापना, (अनुच्छेद-43)** - गांधीजी बड़े-बड़े उद्योगों के समर्थक नहीं थे। क्योंकि उनका मानना था कि छोटे-छोटे उद्योगों का विकास किया जाना चाहिए, जिससे भारत की वृहद् जनसंख्या को रोजगार में लगाया जा सके, साथ ही कुटीर उद्योगों के द्वारा कृषि को भी सहारा मिलेगा।
- अनुसूचित जाति, जनजाति तथा अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि करना और सामाजिक अन्याय एवं शोषण से सुरक्षा (अनुच्छेद-46) प्रदान करना।
- मद्य एवं मादक पेय पदार्थों को दवाइयों के बनाने के अलावा उपयोग को प्रतिबंधित करना, (अनुच्छेद-47)।
- गायों, बछड़ों तथा अन्य दुधारू पशुओं की हत्या पर प्रतिबंध और पशुओं के नस्ल सुधार का प्रयास करना।

2. समाजवादी तत्व (Socialist Elements)

भारतीय संविधान लोकतांत्रिक समाजवाद की ओर झुकाव रखता है। समाजवाद का उद्देश्य सामाजिक एवं आर्थिक न्याय को बढ़ावा देना तथा सभी के हितों की प्राप्ति से संबंधित है। संविधान में वर्णित निदेशक तत्व लोक कल्याणकारी राज्य की तरफ इशारा करते हैं, **जो इस प्रकार हैं** -

- राज्य लोक कल्याण की वृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा तथा सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक न्याय की प्राप्ति का प्रयास करेगा और समाज में व्याप्त आय व प्रतिष्ठा, सुविधा एवं अवसर की असमानता को समाप्त करेगा, (अनुच्छेद-38)।
- राज्य सभी नागरिकों के जीविका के साधन को उपलब्ध कराएगा और सामूहिक हित के लिए संपत्ति के केंद्रीयकरण को रोकेगा तथा संसाधनों के समान वितरण को राज्य सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा एवं स्त्री-पुरुषों में समान कार्य के लिए आय में असमानता को समाप्त करेगा। मजदूरों तथा कर्मकारों के स्वास्थ्य की देख-रेख के साथ-साथ बच्चों के सुकुमार अवस्था के दुरुपयोग को भी रोकने का प्रयास राज्य द्वारा किया जाना चाहिए, (अनुच्छेद-39)।
- राज्य सभी लोगों को समान न्याय तथा निःशुल्क विधिक सहायता प्रदान करेगा, (अनुच्छेद-39(क))।
- राज्य के द्वारा बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी एवं निःसहायवस्था एवं प्रसूति में लोगों को सहायता उपलब्ध करवाया जाएगा, (अनुच्छेद-41)।
- सभी कर्मकारों को निर्वाह मजदूरी, उचित जीवन स्तर व सामाजिक एवं सांस्कृतिक सुविधाएं भी राज्य उपलब्ध कराएगा, (अनुच्छेद-43)।
- उद्योगों के प्रबंध में कर्मकारों की भागीदारी को बढ़ाने का प्रयास राज्य द्वारा किया जाएगा, (अनुच्छेद-43(क))।
- राज्य, पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊंचा करने तथा लोक स्वास्थ्य में सुधार करने का प्रयास करेगा, (अनुच्छेद-47)।

3. उदारवादी तत्व (Liberalism Elements)

इस वर्ग में उदारवाद से संबद्ध सिद्धांतों का समावेश किया गया है, **जो निम्नलिखित हैं** -

- भारत में सभी नागरिकों के लिए समान सिविल संहिता का विकास, (अनुच्छेद-44)।
- राज्य सभी बच्चों को 6 वर्ष की उम्र तक देख-रेख एवं निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करेगा, (अनुच्छेद-45)।
- कृषि व पशुपालन में वैज्ञानिक विधि के विकास को राज्य द्वारा बढ़ावा दिया जाना चाहिए, (अनुच्छेद-48)।
- पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्द्धन और वन व वन्य जीवन की रक्षा का प्रबंध करना, (अनुच्छेद-48(क))।
- राज्य की लोक सेवाओं में न्यायपालिका व कार्यपालिका में पृथक्करण का प्रयास करना, (अनुच्छेद-50)।
- अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा में वृद्धि के साथ-साथ तथा राष्ट्रों के बीच न्यायपूर्ण व सम्मानजनक संबंधों को बनाए रखना और अंतर्राष्ट्रीय विधियों का पालन करना, (अनुच्छेद-51)।

भाग-4 के अलावा उल्लिखित नीति निदेशक तत्व (Directive Principles of State Policy other than Part-IV)

नीति निदेशक तत्व, भारतीय संविधान में केवल भाग-4 में ही वर्णित नहीं है, बल्कि अन्य भागों में भी इसका वर्णन है। जैसा कि अनुच्छेद-350(क) में वर्णित है कि प्रत्येक राज्य और राज्य के अंदर स्थानीय प्राधिकारी का यह कर्त्तव्य है कि भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के बच्चों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त व्यवस्था करे। इसी के साथ संघ का यह कर्त्तव्य है कि वह हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार तथा उसका विकास करे, जिससे वह भारत की सामाजिक एवं सांस्कृतिक तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके, (अनुच्छेद-351)। संघ और राज्यों के क्रियाकलाप से संबंधित सेवाओं और पदों से संबंधित नियुक्तियां करने में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के सदस्यों के दावों का प्रशासन की दक्षता बनाए रखने की संगति के अनुसार ध्यान रखा जाएगा, (अनुच्छेद-335)।

नीति निदेशक तत्वों को लागू करना (Implementing Directive Principles of State Policy)

- वर्तमान में बिहार की नीतीश कुमार सरकार के द्वारा शराब की बिक्री को पूर्णत: प्रतिबंधित करने के लिए विधि का निर्माण किया गया। नीति निदेशक तत्वों में यह उल्लिखित है कि दवाईयों के अलावा मद्यपान को प्रतिबंधित किया जाएगा। इसके अतिरिक्त अनेक राज्यों के द्वारा गायों के वध को एक दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया है, जिससे यह प्रतीत होता है कि सरकार नीति निदेशक तत्व को लागू करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील है। सरकार के द्वारा गंगा को स्वच्छ बनाने के लिए अनेक उपाय किए जा रहे हैं तथा जल संरक्षण के माध्यम से पर्यावरणीय संरक्षण पर भी बल दिया जा रहा है।
- पहले संविधान संशोधन के द्वारा ही निदेशक तत्वों को प्रभावी रूप में लागू करने का प्रयास किया गया। संविधान में अनुच्छेद-15(4) को जोड़ते हुए संसद के द्वारा यह प्रावधान किया गया कि सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े लोगों, अनुसूचित जाति एवं जनजातियों या इनसे संबंधित किसी वर्ग के लिए राज्य द्वारा विशेष प्रबंध किया जाएगा। अत: इस संशोधन के द्वारा अनुच्छेद-46 को व्यावहारिक रूप में लागू करने का प्रयास किया गया, जिसमें यह उल्लिखित है कि दुर्बल वर्गों की शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि के लिए और उनकी सामाजिक अन्याय से सुरक्षा के उपाय किए जाएंगे। पहले संविधान संशोधन से ही संपत्ति के अधिकार को सीमित करने के प्रयास किए गए तथा भूमि सुधार और जमींदारी उन्मूलन से संबंधित विधियों का निर्माण किया गया।
- 25वें संविधान संशोधन, 1971 द्वारा अनुच्छेद-31(ब) को जोड़कर यह प्रावधान किया गया कि अनुच्छेद-39 (इ)(ब) से संबंधित प्रावधान लागू करने के लिए मूल अधिकारों में वर्णित अनुच्छेद-14, 19 और 31 का उल्लंघन किया जा सकता है। अत: अनुच्छेद-39(इ) व (ब) के बारे में अत्यधिक प्रगति हुई है, साथ ही भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जहां मुख्य संपदा कृषि योग्य भूमि है। इसलिए जमीन संबंधी सुधार लगभग पूरे देश में लागू किया जा चुका है।
- वर्ष-1970 के दशक में निदेशक तत्वों को लागू करने के लिए इंदिरा गांधी सरकार ने तीव्र पहल किया एवं अनेक उद्योगों का राष्ट्रीयकरण भी किया गया, जिसमें बैंकों का राष्ट्रीयकरण (वर्ष-1969) भी सम्मिलित हैं। प्रीवी पर्स को भी समाप्त किया गया तथा 42वें संविधान संशोधन, 1976 के द्वारा स्पष्ट रूप में 'समाजवादी' शब्द का प्रयोग किया गया। अत: जेनिंग्स की यह मान्यता अतार्किक प्रतीत होती है, जिसमें इन्होंने भारत को ऐसा फेबियन समाजवादी देश कहा, जिसमें समाजवाद अनुपस्थित है।' नीति निदेशक तत्वों का महत्व इस बात से भी प्रमाणित होता है कि 42वें संविधान संशोधन में नए नीति निदेशक तत्वों को जोड़ा गया, जिसमें राज्य पर यह कर्त्तव्य डाला गया कि वह नि:शुल्क विधिक सहायता उपलब्ध कराएगा, (अनुच्छेद-39(अ))। राज्य उद्योगों व अन्य उपक्रमों में कामगारों का प्रबंध में भागीदारी सुनिश्चित करेगा। यह आर्थिक न्याय की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था, (अनुच्छेद-43(अ))। इसी के साथ पर्यावरण का संरक्षण और वन्य जीवों की रक्षा करना, (अनुच्छेद-48(अ)) एक नया निदेशक तत्व जोड़ा गया।
- जनता पार्टी सरकार ने भी नीति निदेशक तत्वों को प्रभावी रूप में लागू करने के लिए प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की समानता देने का प्रयास किया। संपत्ति के मौलिक अधिकार को 44वें संविधान संशोधन, 1978 द्वारा

भाग-3 से हटा दिया गया, जिससे नीति निदेशक तत्वों को लागू करने में भविष्य में कोई बाधा उत्पन्न न हो, क्योंकि संपत्ति के अधिकार को लेकर अनेक विवाद हुए थे।

- 73वां एवं 74वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1993 अनुच्छेद-40 में वर्णित नीति निदेशक तत्वों को स्पष्ट रूप में लागू करता है। संप्रति पंचायती राज के रूप में न केवल विकेंद्रित शासन के रूप में लोकतंत्र की स्थापना हुई, अपितु सामाजिक न्याय और महिला सशक्तिकरण के प्रबंध भी किए गए हैं। अतः भारत में संघवाद का यह तीसरा प्रभावी स्तर व्यवहार में प्रयुक्त हुआ है। नीति निदेशक तत्वों को लागू करने के लिए उनकी संस्थाओं का निर्माण किया गया है। कुटीर उद्योगों के विकास के लिए अखिल भारतीय खादी ग्रामोद्योग बोर्ड, अखिल भारतीय हस्तशिल्प बोर्ड और लघु उद्योग निगम की स्थापना की जा चुकी है। इसी के साथ जनजाति के पृथक् आयोग का निर्माण महिला आयोग, पिछड़ा वर्ग आयोग और बच्चों के लिए भी राष्ट्रीय आयोग की स्थापना इत्यादि इस बिंदु के पर्याप्त प्रमाण हैं कि नीति निदेशक तत्व कोरे आदर्श नहीं हैं।
- जीवन के स्तर को ऊंचा करने के लिए विशेष रूप में भारत में ग्रामीण जनता के उत्थान के लिए वर्ष-1952 में ही सामुदायिक विकास की योजना आरंभ हुई। संप्रति इंदिरा आवास योजना, ग्रामीण स्वर्ण जयंती रोजगार योजना के माध्यम से सरकार न केवल पिछड़े वर्गों को रोजगार प्रदान कर रही है, अपितु उन्हें आवास की सुविधा भी प्रदान की जा रही है। वर्ष-1973 में अनुच्छेद-50 को लागू करते हुए कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के बीच पूर्ण पृथक्क्रण किया जा चुका है।
- 86वें संविधान संशोधन, 2002 द्वारा अनुच्छेद-45 की विषयवस्तु को बदलते हुए अनुच्छेद-21(क) के अंतर्गत् प्राथमिक शिक्षा को मूल अधिकार बनाया गया।

नीति निदेशक तत्वों की आलोचना (Criticism of Directive Principles of State Policy)

आलोचकों के अनुसार, नीति निदेशक तत्व, पुण्य आत्माओं की महत्वाकांक्षा मात्र और नैतिक प्रवचन मात्र है। क्योंकि इन्हें लागू कराने के लिए न्यायपालिका का सहारा नहीं लिया जा सकता। यह पवित्र भावनाओं का कूड़ेदान मात्र है। आलोचकों ने तो यहां तक कहा कि यह गांधीजी को दी गई अंतिम श्रद्धांजलि है। क्योंकि नीति निदेशक तत्वों में गाय और दुधारू पशुओं के संरक्षण का प्रावधान है। नीति निदेशक तत्वों के कई भाग मूल अधिकारों से सीधे टकराते थे। नीति निदेशक तत्वों के अंतर्गत् सरकार को यह दायित्व दिया गया है कि संपत्ति का केंद्रीयकरण नहीं होना चाहिए। इसका क्रियान्वयन सरकार के हाथों में है, इसलिए यह एक ऐसा चेक है, जिसका भुगतान बैंक की इच्छा पर निर्भर है।

नीति निदेशक तत्वों का महत्व (Importance of Directive Principles of State Policy)

ज्यादातर आलोचकों ने नीति निदेशक तत्वों की आलोचना इस आधार पर किया कि नीति निदेशक तत्व अवादयोग्य हैं। डॉ. अंबेडकर ने इस आलोचना का जवाब देते हुए कहा कि लोकतंत्र में कोई भी निर्वाचित सरकार जनमत की अवहेलना नहीं करेगी। इसलिए निदेशक तत्वों का क्रियान्वयन प्रत्येक सरकार का उद्देश्य होगा और यदि सरकार इसका क्रियान्वयन नहीं करेगी, तो उसे चुनाव में हारने का खतरा बना रहेगा। नीति निदेशक तत्व संविधान में समाजवाद के बीज हैं। उच्चतम न्यायालय ने मिनर्वा मिल्स वाद में यह स्पष्ट कह दिया कि मूल अधिकार और नीति निदेशक तत्व के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध हैं। वर्तमान में उच्चतम न्यायालय के द्वारा जनहित याचिकाओं के अंतर्गत् जीवन के अधिकार की विस्तृत व्याख्या की गई है और जीवन के अधिकार में आजीविका, शिक्षा, शुद्ध पर्यावरण के अधिकार को भी शामिल कर लिया गया है, जो पहले ही नीति निदेशक तत्वों में वर्णित हैं। न्यायपालिका के अनुसार, संविधान एक आंगिक दस्तावेज है। इसलिए मूल अधिकार और नीति निदेशक तत्व एक-दूसरे के पूरक हैं और विगत् 73 वर्षों के भारतीय लोकतंत्र में नीति निदेशक तत्वों को प्रभावी रूप में क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया गया है, जिससे यह प्रतीत होता है कि नीति निदेशक तत्व मात्र कोरे आदर्श नहीं हैं।

मूल अधिकारों और नीति निदेशक तत्वों के मध्य संबंध (Relationship between Fundamental Rights and Directive Principles State Policy)

- मूल अधिकार, वादयोग्य है, जबकि नीति निदेशक तत्व, अवादयोग्य है।
- मूल अधिकारों का लक्ष्य राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना करना है, जबकि नीति निदेशक तत्वों का लक्ष्य सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना करना है।

- मूल अधिकार, सामान्यतः नकारात्मक है, क्योंकि वे सरकार पर कुछ प्रतिबंध आरोपित करते हैं। मूल अधिकार राज्य और सरकार के विरुद्ध प्राप्त होते हैं। राज्य और सरकार द्वारा उनका उल्लंघन नहीं किया जा सकता है, जबकि निदेशक तत्व, सकारात्मक है, क्योंकि वे राज्य और सरकार को किन्हीं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रेरित करते हैं।
- मूल अधिकारों को स्थगित किया जा सकता है, जबकि नीति निदेशक तत्वों को तब तक लागू न किया जाए, जब तक वे स्थगित रहते हैं।
- मूल अधिकार, सापेक्ष हैं, क्योंकि मूल अधिकारों पर संविधान में प्रतिबंध भी आरोपित हैं, जबकि नीति निदेशक तत्वों पर कोई प्रतिबंध आरोपित नहीं है। यदि सरकार वित्तीय और प्रशासनिक रूप में सक्षम है, तो उन्हें प्रभावी रूप में लागू किया जा सकता है।

उदारीकरण के युग में नीति निदेशक तत्व (Directive Principles State Policy in the era of liberalization)

भारतीय संविधान के निर्माण के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था में समाजवाद को प्राथमिकता प्रदान किया था। सरकार के द्वारा महत्वपूर्ण उद्योगों का संचालन किया जाता था तथा निजी उद्योगों की भूमिका सीमित थी। कल्याणकारी राज्य में उद्योगों पर नियंत्रण स्थापित करके सरकार के द्वारा समानता स्थापित करने और नीति निदेशक तत्वों को साकार करने का प्रयत्न किया गया। परंतु वर्ष-1991 में भारतीय अर्थव्यवस्था में निर्णायक परिवर्तन हुआ, जिसमें उदारीकरण एवं निजीकरण की आर्थिक नीति अपनाई गई। सरकार ने निजी क्षेत्रों को प्रोत्साहन दिया तथा सरकार के द्वारा संचालित उद्योगों को भी निजी क्षेत्रों को सौंप दिया गया। आलोचकों के अनुसार, निजीकरण की आर्थिक प्रणाली नीति निदेशक तत्वों के आदर्शों के विपरीत है, क्योंकि निजीकरण में अर्थव्यवस्था का केंद्रीयकरण हो रहा है। जबकि नीति निदेशक तत्वों में यह स्पष्ट उल्लिखित है कि आर्थिक गतिविधियों का संचालन समाज के हित में होगा। निःशुल्क वैधानिक सहायता का अधिकार तथा श्रमिकों के प्रबंध में भागीदारी का अधिकार भी नीति निदेशक तत्वों में वर्णित समाजवादी प्रावधान हैं। जबकि वर्तमान में न्याय प्रणाली अत्यधिक महंगी हो चुकी है तथा निजीकरण के युग में श्रमिकों को मनमानी रूप में कारखाने से निकाला जा सकता है। सरकारें श्रमिक सुधारों के अंतर्गत् श्रमिकों के अधिकारों की कटौती कर रही हैं, जिससे यह प्रतीत होता है कि समाजवाद का आधार समाप्त हो रहा है।

उदारीकरण को नीति निदेशक तत्वों के प्रतिकूल मानना पूर्णतः तार्किक नहीं है, क्योंकि उदारीकरण के द्वारा केवल आर्थिक विकास की रणनीति को परिवर्तित किया गया है, जिससे भारत की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो सके। यह भी उल्लेखनीय है कि वर्ष-1990 के बाद समूचे विश्व में उदारीकरण एवं निजीकरण का प्रभाव बढ़ा है। इसलिए भारत, विश्व से अलग-थलग नहीं रह सकता। वर्तमान में उदारीकरण के युग में सरकार के द्वारा मनरेगा, खाद्य सुरक्षा अधिनियम और शिक्षा अधिकार अधिनियम जैसे महत्वपूर्ण योजनाओं की शुरूआत की गई है, जिससे सामाजिक न्याय को साकार किया जा सके। इसलिए उदारीकरण से सरकार उद्देश्य नहीं बदला है, बल्कि साधन परिवर्तित हुआ है।

न्यायपालिका का दृष्टिकोण (Judiciary's Approach)

मूल अधिकारों और नीति निदेशक तत्वों में पहला संघर्ष **'चंपकम दोरईराजन वाद'** (उच्चतम न्यायालय ने मूल अधिकारों को प्राथमिकता दी) में देखा गया, जिसमें मद्रास की सरकार के द्वारा जाति के आधार पर सीटों का आरक्षण किया गया। सरकार ने सीटों का यह आरक्षण नीति निदेशक तत्व में वर्णित अनुच्छेद-46 को लागू करने के लिए किया, लेकिन मद्रास सरकार के इस अधिनियम को न्यायपालिका में चुनौती दी गई और आवेदनकर्ता ने तर्क दिया कि मद्रास सरकार द्वारा दिया गया आरक्षण मूल अधिकारों का विरोधी है, क्योंकि मूल अधिकारों के अनुच्छेद-29(2) में स्पष्ट प्रावधान है कि राज्य द्वारा वित्त प्राप्त शैक्षणिक संस्थानों में जाति, धर्म, मूल वंश एवं भाषा के आधार पर विभेद नहीं किया जाएगा। न्यायपालिका ने इस निर्णय में मद्रास सरकार के विधि को अवैध घोषित करते हुए मूल अधिकारों को प्राथमिकता प्रदान की। वस्तुतः तकनीकी रूप में या वैधानिक रूप में संविधान में मूल अधिकार प्राथमिक है। नीति निदेशक तत्वों का महत्व भारत जैसे कल्याणकारी राज्य के लिए निर्विवाद था। संविधान निर्माताओं के दृष्टिकोण से इनमें किसी विरोध की कल्पना नहीं की जा सकती। लेकिन इसके बावजूद प्रथम दृष्टया यह प्रतीत होता है कि संविधान में वर्णित कुछ मूल अधिकारों और नीति निदेशक तत्वों के मध्य संबंध विरोधाभाषी हैं। उदाहरण के लिए, एक ओर अनुच्छेद-31 व 19(1) में प्रत्येक व्यक्ति को संपत्ति को धारण करने, अर्जन करने व व्यय करने का अधिकार दिया गया

है, जबकि दूसरी ओर नीति निदेशक तत्वों के अनुच्छेद-39(इ)(ब) में यह स्पष्ट रूप में वर्णित है कि राज्य का यह दायित्व है कि संपत्ति का केंद्रीयकरण कुछ हाथों में न सिमटे। ये दोनों बिंदु परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं।

राज्य के द्वारा अपनी नीतियों के निर्माण में नीति निदेशक तत्वों का प्रयोग किया जाएगा, (अनुच्छेद-37)। नीति निदेशक तत्वों के अंतर्गत् राज्य को जो दायित्व सौंपे गए हैं, उसमें राज्यों ने न केवल विधियों का निर्माण किया, अपितु संविधान संशोधन भी किए। यहां यह उल्लेखनीय है कि जब संविधान संशोधन के द्वारा मूल अधिकारों को छीना गया, तो न्यायपालिका ने उस पर आपत्ति नहीं की। इससे यह प्रतीत होता है कि न्यायपालिका का यह दृष्टिकोण नीति निदेशक तत्वों का विरोधी नहीं, अपितु संवैधानिक रूप में उसने उन विधियों को अवैध माना, जिसमें सामान्य विधि के द्वारा मूल अधिकारों की अवहेलना की गई।

1. गोलकनाथ वाद (1967) (Golaknath Case, 1967)

नीति निदेशक तत्वों और मूल अधिकारों का यह विरोध गोलकनाथ वाद में स्पष्ट रूप में सामने आया। इसमें न्यायपालिका का दृष्टिकोण निश्चित रूप में अभूतपूर्व एवं अप्रत्याशित था, क्योंकि इसमें न्यायपालिका ने मूल अधिकारों को एक विशेष, सर्वोच्च एवं पवित्र स्थान प्रदान किया, अर्थात् मूल अधिकारों में संशोधन नहीं किया जा सकता, लेकिन सरकार ने इस वाद के विरुद्ध संविधान संशोधन किया। 25वें संविधान संशोधन, 1971 में यह स्पष्ट रूप में वर्णित है कि नीति निदेशक तत्वों में वर्णित अनुच्छेद-39(इ) व (ब) मौलिक अधिकारों में वर्णित अनुच्छेद-14, 19 व 31 से प्राथमिक हैं। सरकार के द्वारा पहली बार दो नीति निदेशक तत्वों को तीन मौलिक अधिकारों के ऊपर प्राथमिकता दी गई। अत: अनुच्छेद-39(इ)(ब) नामक नीति निदेशक तत्व को लागू करने के लिए मूल अधिकारों के अनुच्छेद-14, 19 और 31 का उल्लंघन किया जा सकता है।

2. केशवानंद भारती वाद (1973) (Kesavananda Bharati Case, 1973)

न्यायपालिका ने 25वें संविधान संशोधन, 1971 को वैध माना, जिसमें नीति निदेशक तत्व को मूल अधिकारों पर प्राथमिकता प्रदान की गई। यह नीति निदेशक तत्वों का स्पष्ट महत्व है कि अनुच्छेद-39(इ) व (ब) को लागू करने के लिए अनुच्छेद-14, 19 और 31 का उल्लंघन किया जा सकता है। न्यायपालिका ने पहली बार मूल अधिकारों पर नीति निदेशक तत्वों को प्राथमिकता प्रदान किया। इस वाद में न्यायपालिका ने मूल अधिकारों और नीति निदेशक तत्वों के मध्य सामंजस्यपूर्ण संबंध या समन्वयकारी संबंध स्थापित किया। केशवानंद भारती वाद के निर्णय में न्यायपालिका का यह दृष्टिकोण देखा जा सकता है।

3. मिनर्वा मिल्स वाद (1980) (Minerva Mills Case, 1980)

इंदिरा गांधी सरकार के द्वारा 42वां संविधान संशोधन, 1976 प्रस्तुत किया गया और नीति निदेशक तत्वों को मूल अधिकारों से प्राथमिकता प्रदान किया गया तथा संशोधन में यह कहा गया कि नीति निदेशक तत्वों के सभी अनुच्छेदों (अनुच्छेद-36 से 51) को लागू करने के लिए भाग-3 में वर्णित अनुच्छेद-14, 19, 31 द्वारा प्राप्त मूल अधिकारों का उल्लंघन किया जा सकता है। इससे नीति निदेशक तत्वों को मूल अधिकारों की तुलना में अत्यधिक वरीयता प्रदान की गई। इस संशोधन को मिनर्वा मिल्स वाद में उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई। परिणामस्वरूप न्यायपालिका ने 42वें संविधान संशोधन के इस भाग को रद्द कर दिया और यह कहा कि अनुच्छेद-39(इ) व (ब), अनुच्छेद-14 और 19 से प्राथमिक होंगे। अन्य नीति निदेशक तत्वों और मूल अधिकारों के मध्य संबंध समन्वयपूर्ण और सामंजस्यकारी होंगे। न्यायपालिका ने केशवानंद भारती वाद की स्थिति को पुन: बहाल कर दिया। यह उल्लेखनीय है कि वर्ष-1978 में संपत्ति के अधिकार (अनुच्छेद-31) एवं (अनुच्छेद-19 (1)(f)) को मूल अधिकारों के भाग से हटा दिया गया है। इसलिए दोनों के मध्य विरोध या प्राथमिकता का प्रश्न ही नहीं है, अपितु दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। संप्रति जनहित याचिका के युग में न्यायपालिका द्वारा जिस प्रकार मूल अधिकारों की व्याख्या विस्तृत रूप में की जा रही है, उससे यह स्पष्ट है कि न्यायपालिका की प्रतिबद्धता भी सामाजिक न्याय के प्रति है।

समान नागरिक संहिता (Common Civil Code)

वर्तमान में हिंदुओं के लिए हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 लागू है। जबकि मुसलमानों के लिए वर्ष-1937 में मुस्लिम पर्सनल लॉ का निर्माण किया गया। जिसके अनुसार, मुसलमानों के विवाह उत्तराधिकार के विषयों का निर्धारण करते हैं। भारत में आपराधिक क्षेत्र में सभी नागरिकों के लिए एक समान विधि का निर्माण किया गया है, परंतु विवाह,

संपत्ति और उत्तराधिकार के संबंध में अलग-अलग धर्मावलंबियों के लिए पृथक्-पृथक् विधि का निर्माण किया गया है। हिंदू धर्म के अनुयायियों के लिए विवाह और उत्तराधिकार की अलग विधियां हैं, जो सिख धर्म, जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म के अनुयायियों के लिए समान रूप में लागू होती हैं। ईसाईयों के लिए विवाह और उत्तराधिकार के अलग नियम हैं, मुसलमानों के लिए भी विवाह और उत्तराधिकार के अपने नियम हैं, जिसके अनुसार कोई मुस्लिम व्यक्ति चार महिलाओं के साथ विवाह कर सकता है तथा मुस्लिम पर्सनल लॉ के अनुसार, तलाक दी गई महिलाओं को पति से गुजारा भत्ता प्राप्त करने का अधिकार भी नहीं है। इन अलग-अलग विधियों को समाप्त करके सभी भारतीय नागरिकों के लिए एक समान विधि होनी चाहिए, जिसमें विवाह, उत्तराधिकार एवं तलाक के प्रावधान नियंत्रित हों। संविधान सभा में समान नागरिक संहिता के मुद्दे पर सहमति के अभाव के कारण इसे संविधान के भाग-4 के अनुच्छेद-44 में शामिल किया गया है। नीति निदेशक तत्वों में शामिल होने के कारण इसे लागू करने के लिए न्यायपालिका के समक्ष याचिका दायर नहीं की जाएगी।

न्यायपालिका का निर्णय (Decisions of Judiciary)

शाहबानो नामक मुस्लिम महिला को उसके पति के द्वारा तलाक दे दिया गया था, परिणामस्वरूप शाहबानो ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय में अपने पति से गुजारा भत्ता देने के लिए याचिका दायर की। पति के अनुसार, मुस्लिम पर्सनल लॉ के अनुसार पत्नी को गुजारा भत्ता देने का प्रावधान नहीं है, परंतु आपराधिक प्रक्रिया संहिता में महिलाओं को गुजारा भत्ता प्राप्त करने का अधिकार है। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने शाहबानो के पति को शाहबानो को गुजारा भत्ता देने का निर्देश दिया। न्यायालय के अनुसार, आपराधिक प्रक्रिया संहिता पर्सनल लॉ से ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह मामला महिला के अधिकार से संबंधित है, जिसे धर्म से जोड़कर देखना तार्किक नहीं है। अपील में उच्चतम न्यायालय ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय को वैधानिक माना। उच्चतम न्यायालय ने शाहबानो वाद, 1986 में सरकार को यह स्पष्ट निर्देश दिया था कि भारत में एक समान नागरिक संहिता का निर्माण होना आवश्यक है, परंतु उच्चतम न्यायालय का निर्णय लागू नहीं हो सका, क्योंकि राजीव गांधी सरकार के द्वारा आपराधिक प्रक्रिया संहिता में संशोधन कर दिया गया। जिसके अनुसार, मुस्लिम महिलाएं तलाक के बाद अपने पति से गुजारा भत्ता की मांग नहीं कर सकतीं। आलोचकों के अनुसार, यह तुष्टीकरण की नीति है। उच्चतम न्यायालय ने हाल के निर्णय में यह भी कहा कि विवाह का मामला अंत:करण की स्वतंत्रता से बिल्कुल संबंधित नहीं है। इसलिए इसको नियंत्रित किया जा सकता है और उच्चतम न्यायालय ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि दूसरे विवाह के लिए धर्मांतरण करना असंवैधानिक है। न्यायपालिका के अनुसार, यह धार्मिक विषय पर आधारित नहीं है, बल्कि महिलाओं के उत्थान से जुड़ा हुआ विषय है। उच्चतम न्यायालय के हाल के निर्णय में यह कहा जा चुका है कि बहुपत्नी प्रथा और तीन बार तलाक कहने का प्रावधान इस्लाम धर्म का मूल भाग नहीं है, बल्कि यह महिलाओं से जुड़ा हुआ एक सामाजिक मुद्दा है। इसलिए समान नागरिक संहिता के निर्माण का मार्ग प्रशस्त होता जा रहा है। वर्तमान में भी समान नागरिक संहिता को लागू करने की लगातार मांग की जा रही है। इससे संबंधित अनेक मुद्दे निम्नलिखित हैं -

पंथनिरपेक्ष राज्य (Secular State)

पंथनिरपेक्षता, संविधान का आधारभूत ढांचा है और पंथनिरपेक्ष देश में धार्मिक आधार पर विधियों का निर्माण अतार्किक प्रतीत होता है, क्योंकि पंथनिरपेक्ष देश में मानव निर्मित विधियां प्राथमिक होनी चाहिए। उच्चतम न्यायालय ने साहबानों वाद में यह स्पष्ट कर दिया कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता (Criminal Procedure Code) तथा शरीयत एक्ट में विरोध की स्थिति में आपराधिक प्रक्रिया संहिता को प्राथमिक माना जाएगा और इसी वाद में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि भारत में समान नागरिक संहिता का निर्माण होना चाहिए। यद्यपि यह बिंदु उल्लेखनीय है कि भारत में राजनीतिक दल, धर्म का राजनीतिक प्रयोग करते हैं और अपने दलीय हितों को बढ़ाने के लिए सांप्रदायिकता का सहारा लेते हैं।

महिला सशक्तिकरण (Women Empowerment)

उच्चतम न्यायालय ने साहबानो वाद में तथा सरला मुद्गल वाद में यह स्पष्ट कहा कि महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए समान नागरिक संहिता का निर्माण आवश्यक है। इसलिए तीन तलाक के प्रावधान को असंवैधानिक घोषित करते हुए न्यायालय ने कहा यह अधिकार केवल पुरूषों को प्राप्त हैं, महिलाओं को नहीं। लेकिन यह बिंदु ध्यान देने योग्य है कि महिलाओं के लिए लोक सभा में आरक्षण के प्रस्ताव का राजनीतिक दलों के द्वारा विरोध किया गया।

विविधतापूर्ण समाज (Diversify Social)

भारतीय समाज, अत्यधिक विविधतापूर्ण है और पूर्वोत्तर राज्यों में नागालैंड, असम, मेघालय, त्रिपुरा व मिजोरम में भारतीय दंड संहिता और आपराधिक प्रक्रिया संहिता के कानून लागू नहीं होते, क्योंकि वे अपनी वैवाहिक विधियों का निर्धारण स्वयं करते हैं, जो जनजाति परंपरा पर आधारित है। इसलिए भारत जैसे विविधतापूर्ण समाज में एकता का आशय, विविधता में एकता है। अत: विविधताओं को समाप्त करके एकता का निर्माण नहीं किया जा सकता।

धार्मिक अधिकार (Religious Rights)

समान नागरिक संहिता के विरोधी यह तर्क देते हैं कि उनके व्यक्तिगत कानून या पर्सनल लॉ धार्मिक अधिकारों के अंतर्गत् आते हैं और अनुच्छेद-25 के अंतर्गत् प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक अधिकार प्राप्त हैं, यद्यपि यह भी उल्लेखनीय है कि भाग-3 में वर्णित धार्मिक अधिकार निरपेक्ष नहीं है। अपितु सामाजिक सुधार और सामाजिक कल्याण के आधार पर धार्मिक अधिकारों को सीमित किया जा सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

वर्तमान में यह भ्रम बना हुआ है कि समान नागरिक संहिता के द्वारा हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 को सभी समुदायों के लिए लागू कर दिया जाएगा, जो वास्तविक नहीं है। सरकार के द्वारा अभी तक समान नागरिक संहिता के संदर्भ में कोई ड्रॉफ्ट तैयार नहीं किया गया है। इसलिए इस संबंध में अनेक मतभेद बने हुए हैं। इसलिए पहले सरकार को इस संबंध में कोई ड्रॉफ्ट तैयार करके लोगों की राय जाननी चाहिए। समान नागरिक संहिता का विचार निर्विवाद रूप में बेहतर विकल्प है, परंतु इसके निर्माण से पहले विभिन्न समुदायों के प्रतिनिधियों के साथ संवाद करने की आवश्यकता है तथा इसे क्रमिक रूप में लागू करने का प्रयत्न किया जाए और सबकी सहमति से लागू किया जाए।

.....

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learnig Platform
KHAN SIR

मौलिक कर्त्तव्य
(Fundamental Duties)

गांधीजी का प्रसिद्ध कथन है कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों का पालन करे, तो अन्य को स्वाभाविक रूप में अधिकार प्राप्त हो जाएंगे। प्रत्येक अधिकार में कर्त्तव्य अंतर्निहित होता है और अभिव्यक्ति के अधिकार में यह अंतर्निहित है कि हम एक-दूसरे के अभिव्यक्ति का सम्मान करें। इसीलिए संविधान निर्माताओं का यह मत था कि मूल कर्त्तव्यों के संविधान में उल्लेख की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अधिकार निरपेक्ष नहीं होते और प्रत्येक अधिकार में कर्त्तव्य निहित होते हैं।

जापान के अलावा विश्व के किसी भी लोकतांत्रिक देश में मूल कर्त्तव्य का अध्याय शामिल नहीं किया गया, बल्कि यह सोवियत संघ व चीन जैसे समाजवादी देशों के संविधान में शामिल किया गया है। मूल कर्त्तव्य व्यक्ति के राज्य के प्रति कर्त्तव्य है। जबकि लोकतांत्रिक देश में राज्य का, व्यक्ति के प्रति कर्त्तव्य होता है। इसीलिए मूल कर्त्तव्य के बजाए, मूल अधिकारों का उल्लेख किया जाता है। कर्त्तव्य का विकास, परिवार, विद्यालय एवं विश्वविद्यालय जैसी संस्थाओं में स्वैच्छिक रूप में होना चाहिए। इसलिए संविधान निर्माताओं ने इसे मूल संविधान में शामिल नहीं किया।

मूल कर्त्तव्यों की आवश्यकता (Required of the Fundamental Duties)

स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिश पर 42वें संविधान संशोधन, 1976 द्वारा मूल कर्त्तव्यों को संविधान के **भाग-4 (क) के अनुच्छेद-51(।)** में जोड़ा गया, जिसका अनेक दलों ने इसका भारी विरोध किया। आदर्शों के अनुसार, भारत में जब लोग सामान्यत: विधि की आज्ञा का पालन करते हैं, तो उन्हें कर्त्तव्य बताने की क्या आवश्यकता है? लोगों को कर्त्तव्य बताने का सीधा अभिप्राय है कि लोग अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर रहे हैं, सरकार ऐसा मानती है। आलोचना के प्रतिउत्तर में तत्कालीन कांग्रेस के अध्यक्ष देवकांत बरुआ ने कहा कि यदि एक लोकतांत्रिक राज्य में राष्ट्र की संप्रभुता बनाए रखने और उसकी एकता की रक्षा करने के लिए नागरिकों को कर्त्तव्य का बोध कराया जाए, तो इसमें कोई गलती नहीं है। इन कर्त्तव्यों में नागरिकों से संविधान, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रगान के प्रति सम्मान की अपेक्षा की गई है। नागरिकों का यह भी कर्त्तव्य है कि वे स्वतंत्रता संघर्ष के प्रमुख आदर्शों को बनाए रखें तथा नागरिकों का दायित्व यह भी है कि वे देश की संप्रभुता, एकता एवं अखण्डता की रक्षा करें। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के समक्ष आरंभ से ही राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के मार्ग में अनेक बाधाएं थीं। स्वतंत्र भारत को वर्ष-1962, 1965 और 1971 में पड़ोसी देशों के साथ युद्ध में उलझना पड़ा तथा आंतरिक सुरक्षा की स्थिति पर भी चुनौती उत्पन्न हुई। इसलिए नागरिकों के लिए कर्त्तव्य महत्वपूर्ण हैं।

भारत एक विविधतामूलक बहुलवादी देश है, जहां अनेक जाति, धर्म एवं पंथों के लोग निवास करते हैं। इसलिए नागरिकों का यह मूल कर्त्तव्य है कि भारत में बंधुत्व की भावना का विकास करें और ऐसी प्रथाओं का परित्याग करें, जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों, क्योंकि हमारे समाज में महिलाओं की स्थिति अत्यंत पिछड़ी है। नागरिकों का कर्त्तव्य है कि वे भारत की सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकता को बनाए रखें। संप्रति समाज में सांप्रदायिकता, क्षेत्रीयता और जातीय वैमनस्यता को त्यागकर नागरिकों से मूल कर्त्तव्य के पालन की अपेक्षा है और नागरिकों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे हिंसा से दूर रहें। सार्वजनिक संपत्ति को क्षति न पहुंचाएं एवं प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करें तथा वैज्ञानिक प्रगति, मानववाद और अन्वेषण की भावना का विकास करें। निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र में उत्कृष्टता की ओर बढ़ने का प्रयास करें। 86वें संविधान संशोधन, 2002 के द्वारा एक अन्य मूल कर्त्तव्य अनुच्छेद-51(क)(ट) को भी जोड़ा गया है, जिसके अंतर्गत् अभिभावकों का यह दायित्व है कि वे अपने बच्चों को अनिवार्य शिक्षा दिलाएं। मूल कर्त्तव्य को संविधान में जोड़ते समय कुछ सदस्यों ने निम्नलिखित कर्त्तव्यों को भी सम्मिलित करने का सुझाव दिया था, **जो निम्नलिखित हैं** - परिवार नियोजन, करों की अदायगी, मंत्रियों के भी कर्त्तव्य, जातिवाद को समाप्त करना और आवश्यक सैन्य प्रशिक्षण इत्यादि।

मूल कर्त्तव्यों की सूची (List of the Fundamental Duties)

संविधान में वर्णित मौलिक कर्त्तव्य निम्नलिखित हैं - भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि **वह**-

1. संविधान का पालन और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करें।
2. स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखें और उनका पालन करें।
3. भारत की प्रभुता, एकता एवं अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्य रखें।
4. देश की रक्षा करें और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा को तत्पर रहें।
5. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करें, जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हों, ऐसी प्रथाओं का त्याग करें, जो स्त्रियों के सम्मान के विपरीत हों।
6. हमारी सामाजिक व संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझें और उसका परिरक्षण करें।
7. प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत् वन, झील, नदी, वन्य जीव हैं, की रक्षा करें, उसका संवर्धन करें और प्राणिमात्र पर दयाभाव रखें।
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें।
9. सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखें और हिंसा से दूर रहें।
10. व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करें, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए अपने लक्ष्य और उपलब्धि की नई ऊंचाईयों को छू लें।
11. माता-पिता या संरक्षक का कर्त्तव्य है कि छः से चौदह वर्ष की आयु वाले अपने बच्चों या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करें, (86वें संविधान संशोधन, 2002)।

मूल कर्त्तव्य की प्रकृति (Nature of Fundamental Duties)

निदेशक तत्वों की भांति मूल कर्त्तव्य भी अवादयोग्य है, जिसका अभिप्राय है कि इसे लागू कराने के लिए कोई भी व्यक्ति न्यायपालिका का सहारा नहीं ले सकता और न ही राज्य द्वारा निर्मित किसी विधि को इस आधार पर चुनौती दी जाएगी, उससे मूल कर्त्तव्य का उल्लंघन होता है। इसलिए इसकी प्रकृति नैतिक प्रतीत होती है।

संविधान में इसे बाध्यकारी नहीं बनाया गया है, परंतु व्यावहारिक रूप में यह बाध्यकारी है, क्योंकि राष्ट्रीय ध्वज की प्रयोग के लिए विधि का निर्माण किया गया है। जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम के अनुसार धार्मिक आधार पर वोट मांगना भ्रष्ट आचरण की श्रेणी में आता है और भारतीय दंड संहिता के अनुसार जानबूझकर सामाजिक सौहार्द को विघटित करना एवं महिलाओं के सम्मान के विरूद्ध कार्य करना एक दंडनीय अपराध है।

मूल कर्त्तव्य एवं मूल अधिकार के बीच का संबंध (Relation between Fundamental Rights and Fundamental Duties)

कर्त्तव्य के बिना किसी भी व्यक्ति के अधिकार सुरक्षित नहीं रहेंगे, क्योंकि केवल अधिकार से समाज में अराजकता उत्पन्न हो जाएगी और अधिकारों के अभाव में व्यक्ति राज्य एवं सरकार का दास बन जाएगा। अधिकारों के अभाव में राज्य का व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पक्षों पर नियंत्रण स्थापित हो जाएगा। अतः अधिकार एवं कर्त्तव्य एक-दूसरे के पूरक हैं या एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

वर्तमान में उच्चतम न्यायालय के द्वारा अधिकारों की रक्षा करते समय व्यक्ति द्वारा संपादित कर्त्तव्य का भी संज्ञान लिया जाता है। उदाहरण के लिए, नागरिकों के अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सीमित किया जा सकता है। यदि उसने तिरंगे को जलाया है या सामाजिक समरसता को भंग करने का प्रयास किया है। इसलिए मूल कर्त्तव्य भी मूल अधिकारों पर प्रतिबंध आरोपित करते हैं।

मूल कर्त्तव्यों को लागू करना (Enforcement of Fundamental Duties)

न्यायपालिका की व्याख्या (Interpretation of Judiciary)

मौलिक कर्त्तव्य, अवादयोग्य है, जिन्हें लागू कराने के लिए न्यायपालिका का सहारा नहीं लिया जा सकता और न ही इनके उल्लंघन पर किसी दंड का प्रावधान है, परंतु यदि विधायिका कानून निर्माण द्वारा किसी मौलिक कर्त्तव्य का पालन किया जाना अनिवार्य घोषित करती है, तब मौलिक कर्त्तव्यों का पालन न किया जाना दण्डनीय अपराध होगा। परंतु वर्तमान समय में सरकार ने राष्ट्र ध्वज के सम्मान से संबंधित विधि का निर्माण किया है।

न्यायपालिका के महत्वपूर्ण निर्णय के अनुसार, (हाथी सिंह मैन्युफैक्चरिंग वाद, 1960) यदि कोई व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों का उल्लंघन करता है तथा न्यायपालिका में मूल अधिकारों को लागू करने की याचिका प्रस्तुत करता है, तो न्यायपालिका उसके मूल अधिकारों को सीमित कर सकती है, क्योंकि उसने अपने कर्त्तव्यों का उल्लंघन किया है। 42वां संशोधन अधिनियम, 1976 संसद को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह विधि बनाकर मूल कर्त्तव्यों के उल्लंघन की स्थिति में दोषी व्यक्तियों के लिए दण्ड की व्यवस्था करे। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान छात्र बनाम् संघवाद में न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि यद्यपि मूल कर्त्तव्य, मूल अधिकारों की भांति प्रवर्तनीय नहीं बनाए गए हैं, लेकिन यह महत्वपूर्ण बात है कि भाग-4(क) के अनुच्छेद-51(क) में भी कर्त्तव्यों के पहले **'मूलभूत'** (Fundamental) शब्द का प्रयोग करके उन्हें उसी प्रकार महत्व देने का प्रयास किया गया है, जिस प्रकार मूल अधिकारों के लिए किया गया है।

आलोचना (Criticism)

भाग-4(क) की आलोचना करते हुए प्रसिद्ध विधि विशेषज्ञ नाना पालकीवाला ने कहा कि 'मूल कर्त्तव्यों में वर्णित कर्त्तव्यों के तहत् प्रत्येक नागरिकों को वैज्ञानिक मनोवृत्ति और अन्वेषण की भावना का विकास करना चाहिए, लेकिन जिस देश में दो-तिहाई जनसंख्या अशिक्षित हों, तो ऐसे समाज में मूल कर्त्तव्यों का महत्व नहीं होगा।' इन्होंने तो यहां तक कहा कि आपातकाल के द्वारा नागरिकों की स्वतंत्रता का हनन हो रहा है। अन्य आलोचकों ने इस अध्याय के प्रकृति की आलोचना की। इनके अनुसार, संविधान में पहले से ही निदेशक तत्वों का भाग अवादयोग्य है और उसके बाद मूल कर्त्तव्यों के अध्याय को भी अवादयोग्य रूप में रखा गया, जो अतार्किक एवं अप्रासंगिक हैं।

1. अर्थ स्पष्टता का अभाव

मौलिक कर्त्तव्यों में प्रयोग किए गए शब्दों का अर्थ स्पष्ट नहीं है, जिनकी व्याख्या अलग-अलग होती है। आलोचकों के अनुसार, जिस देश में बच्चों को शिक्षा पूर्ण रूप में प्राप्त न हो, उनसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

2. मौलिक कर्त्तव्य लोकतांत्रिक भावना के विरोध में

लोकतांत्रिक देश में जनता की इच्छा का सर्वाधिक महत्व होता है तथा सरकारें एवं व्यवस्था जनता के लिए होती हैं, जबकि मौलिक कर्त्तव्य राज्य को ज्यादा महत्व देते हैं, व्यक्ति को कम। मौलिक कर्त्तव्य जनता से कुछ देने की उम्मीद करते हैं, जो राज्य के पक्ष में हों।

महत्व (Importance)

- समाज, व्यक्ति से व्यापक है और समाजहित ज्यादा महत्वपूर्ण होते हैं। अतः मौलिक कर्त्तव्यों द्वारा लोगों को सामाजिक दायित्वों का बोध कराया जाता है।
- मौलिक कर्त्तव्यों द्वारा समाज तथा राष्ट्रहित में मौलिक अधिकारों के प्रयोग को मोड़ने का प्रयास किया गया है। लोग राज्य से अधिकारों की ही मांग न करें, बल्कि अपने कर्त्तव्यों को भी समझें। जैसे-स्वतंत्रता के अधिकार एवं शिक्षा के अधिकार का प्रयोग कर ज्ञानार्जन एवं वैज्ञानिक मनोवृत्ति का विकास करें तथा समाज व देश को विकास के पथ पर ले जाएं।
- जो मूल कर्त्तव्य विधि द्वारा अनिवार्य कर दिए गए हैं, उनके उल्लंघन पर दंड दिया जा सकता है।
- मूल कर्त्तव्य कानूनों की वैधता की परीक्षण में सहायता करते हैं। यदि किसी कानून में मौलिक कर्त्तव्यों के प्रश्न होते हैं, तो उसे मौलिक अधिकारों पर वरीयता दी जा सकती है।

मूल कर्त्तव्यों का विस्तार (Expansion of Fundamental Duties)

भाग-4 (।), 42वें संविधान संशोधन के द्वारा जोड़ा गया था, जिस दौरान भारत में आपातकाल लागू था और विपक्षी दल के नेता जेल में बंद थे। इसलिए आलोचकों ने कहा कि सरकारें तो अपने कर्त्तव्यों का उल्लंघन कर रही हैं एवं नागरिकों से कर्त्तव्य पालन की अपेक्षा कर रही हैं। संविधान की समीक्षा करने के लिए न्यायमूर्ति वेंकट चेलैया की अध्यक्षता में संविधान समीक्षा आयोग का गठन किया गया। संविधान के 50 वर्षों के कार्यकरण की समीक्षा करते हुए वेंकट चेलैया आयोग ने (वर्ष-2010) यह सुझाव दिया कि संविधान में कुछ नए मूल कर्त्तव्यों को जोड़ने की आवश्यकता है, जिसमें **निम्नलिखित मूल कर्त्तव्य प्रमुख हैं** -

- चुनाव में मत प्रदान करना।
- लोकतांत्रिक प्रक्रिया में सहभागिता।
- करों की अदायगी।
- बच्चों की बौद्धिक एवं नैतिक भलाई।
- औद्योगिक संगठनों का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने कर्मचारियों के बच्चों को शिक्षा प्रदान करें।

उच्चतम न्यायालय के द्वारा भी यह स्वीकार किया गया है कि वर्तमान में मूल कर्त्तव्यों में परिवार नियोजन व मतदान को अनिवार्य करना जैसे तत्वों को मूल कर्त्तव्यों में शामिल करने की आवश्यकता है, जिससे इसका महत्व देखा जा सकता है।

....

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learnig Platform
KHAN SIR